International Research Journal of Human Resource and Social Sciences
ISSN(O): (2349-4085) ISSN(P): (2394-4218)
Impact Factor 5.414 Volume 5, Issue 11, November 2018
Website- www.aarf.asia, Email :, editoraarf@gmail.com

भारतीय पर्यावरण सम्बन्धित चिन्तन : एक अवलोकन

सन्ध्या शर्मा,
प्रवक्ता,
विवेकानन्द महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय
drsandhyasharma@gmal.com

भारतीय पर्यावरण के अवलोकन के लिए अनेक शोध प्रस्तुत किए जा चुके हैं। वर्तमान में उत्पन्न पर्यावरण सम्बन्धित जटिल विषमताओं को अनेक रूपों में देखा गया है। प्राकृतिक सम्पदाओं का उपयोग/दुरुपयोग सभी विषमताओं का कारण माना जाता है। समाज व सभ्यताओं के विकास के लिए प्रकृति का विनाश कितना उचित है, इस पर अनेक मतभेद हैं। जब मानव ने कृषि करना सीखा, आग की खोज की या स्थायी जीवन व्यतीत करना आरम्भ किया, तभी से प्राकृतिक संसाधनों से छेड़छाड़ की शुरुआत हुई। आश्चर्य है कि औपनिवेशिक काल के पूर्व कभी प्रकृति के विनाश की चर्चा प्रत्यक्ष रूप से नहीं हुई।

भौगोलिक क्षेत्रों में पर्यावरण सम्बन्धी परिवर्तन प्राकृतिक रूप से होते रहे हैं। नदियों का दिशा परिवर्तन, पर्वतों की चोटिया का सामुद्रिक जल–स्तर से नीचा हो जाना या हिम–खण्डों का पिघलना मानव जन–जीवन को अनेक प्रकार से प्रभावित करते रहे हैं। मानव–जीवन को क्षति भी प्राकृतिक आपदाओं ने पहुँचाई। प्रकृति–संस्कृति का यह संघर्ष तब से चला आ रहा है जब से सृष्टि की रचना हुई। वर्तमान में प्राकृतिक आपदाओं के लिए मनुष्य को उत्तरदायी समझा जाता है। राज्यों और राष्ट्रों के राजनैतिक परस्पर विरोधी उद्देश्यों के लिए इन प्राकृतिक संसाधनों के ह्रास व आपदाओं के लिए उनको दोषी ठहराया जाता है।

जब भी हम पर्यावरण की बात करते हैं तो सभी प्रकार के प्राकृतिक संसाधनों के ह्रास के लिए हम औपनिवेशिक साम्राज्य को उत्तरदायी ठहराते हैं। माधव गादगिल (Madhav Gadgil) तथा रामचन्द्र गुहा द्वारा लिखित 'द फिशर्ड लैंड : एन

इकोलोजिकल हिस्ट्री ऑफ इंडिया' स्पष्ट रूप से औपनिवेशिक शासकों द्वारा अपने हितों की पूर्ति के लिए पारिस्थितिक उथल–पुथल किए जाने की गहन व्याख्या की है।[1] उनके अनुसार यूरापीयों के भारत में आने के बाद प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग के तरीकों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए जिनके प्रभाव दूरगामी थे। इस काल में प्राकृतिक संसाधनों को संग्रहित करके उपभोग के लिए प्रयोग किए जाने के स्थान पर उत्पादन, परिवहन व व्यापार के लिए किया जाने लगा। पूर्व औपनिवेशिक काल में संसाधनों को पड़ोसी क्षेत्रों से साझा किया जाता था जो कि घटने लगा था। यूरोपीय दखल से बाज़ार–केन्द्रित अर्थव्यवस्था का विकास हुआ तथा संसाधनों के असीमित उपयोग की प्रक्रिया आरम्भ हुई। इन दोनों विद्वानों का मत है कि अँग्रेजों ने पहले अपने देश, आयरलैंड तथा दक्षिणी अफ्रीका के जंगलों का पूर्ण उपयोग किया तथा 1860 ईस्वी के पश्चात् भारतीय जंगलों पर अपनी दृष्टि डाली। पोत–निर्माण, लोहा पिघलाने व कृषि के लिए उन्हें अपने देश में लकड़ी की आवश्यकता पूर्ति के लिए भारत से लकड़ी का निर्यात करना था। सुदूर जंगलों से लकड़ी को बन्दरगाहों तक पहुँचाने के लिए जंगलों को काट कर सड़कें व रेल मार्ग बनाए गए। इस औपनिवेशिक शोषण के लिए ब्रिटिश काल में जंगलों व खनन उत्पाद पर समय–समय पर भारतीयों के स्वामित्व को नकार कर अंग्रेजी एकाधिकार स्थापित किए गए।

इस विचारधारा के प्रतिकूल ब्रिटिश नीतियों के समर्थन में भी मत प्रस्तुत किए गए और ब्रिटिश नीतियों को भारतीय औद्योगिक विकास के परिप्रेक्ष्य में उचित ठहराया गया। यद्यपि गुहा, गाडगिल तथा अन्य विद्वान् भारत में हुए पर्यावरण आन्दोलनों के संदर्भ से प्राकृतिक सम्पदाओं के गहन शोषण व ब्रिटिश द्वारा मानव जीवन के ऊपर कुप्रभावों की पुष्टि करते हैं[2] परन्तु जार्ज एरडोसी इन विचारों से सहमत नहीं हैं। उनके विचार में प्राचीन कालीन विवरणों में जल–धाराओं, जंगलों व अन्य प्राकृतिक सम्पदाओं की स्थिति औपनिवेशिक काल से भिन्न नहीं थी। अतः शोषण की बात उचित नहीं है।[3] एम. अरिवलगन ने भी अपने शोध–पत्र में लिखा है कि पर्यावरण सम्बन्धी शोध में राष्ट्रवादी तथा संशोधित इतिहास–लेखन में औपनिवेशिक नीतियों के विरुद्ध तथा समर्थन में मत देखने के लिए मिलते हैं। राष्ट्रवादी लेखक भारतीय प्रदेशों में हुए पर्यावरण के विनाश और औपनिवेशिक शोषणकारी नीतियों से जोड़ते हैं। संशोधित इतिहास लेखन में राष्ट्रवादी मतों की पुनरावृत्ति की गई तथा ये माना गया

कि राष्ट्रवादियों ने औपनिवेशिक शासकों, स्थानीय सामाजिक ईकाइयों तथा पर्यावरण को एक सुनिश्चित इकाई के रूप में प्रस्तुत कर सम्पूर्ण भारत में पर्यावरण के विनाश को समझने की कोशिश की। वास्तव में ये सभी परिवर्तनशील और अस्थिर परिस्थितियों के कारण बदलते रहते थे। अविरलगन के. शिवरामकृष्णन के संदर्भ से तर्क देते हैं कि औपनिवेशिक राज्य तथा जन–जातीय समूहों के बीच प्रतिरोध व वार्तालाप के कारण औपनिवेशिक नीतियों में बदलाव भी किए जाते थे। शिवरामकृष्णन् कुमाऊँ का ही उदाहरण देते हैं और बताते हैं कि किस प्रकार आदिवासियों को वन–सम्पदा से सम्बन्धित निर्णय लेने का अधिकार दे दिया गया था।[5]

इन सभी वाद–विवादों को समझने के लिए हमें केवल वन–सम्पदा के विषय से हट कर उन सभी मुद्दों का आँकलन संक्षिप्त में करना होगा, जिनसे पर्यावरण के विनाश को जोड़ा गया है।[6] गाडगिल एवम् गुहा ने लिखा कि निर्वनीकरण के अतिरिक्त बाँध परियोजनाएँ भी पर्यावरण के विनाश को बचाने के लिए प्रतिरोधी आन्दोलनों के माध्यम से समझा जाना चाहिए। इस लेख में स्वतन्त्रता पश्चात् हुए बाँध–परियोजनाओं की चर्चा की गई है परन्तु इसको मुल्शी सत्याग्रह के संदर्भ में आलोचनात्मक रूप से समझ सकते हैं।[7] मुल्शी पेटा, जो कि पूना के निकट स्थित हैं, के किसानों ने टाटा ग्रुप द्वारा समर्थित मूला नदी पर बाँध बनाए जाने का विरोध किया। आंदोलन का नेतृत्व पांडुरंग महादेव बापत ने किया था। गुहा ने 6 जुलाई, 2008 में हिन्दू समाचार–पत्र में लिखा कि माधव गाडगिल नर्मदा बचाओ आन्दोलन को मुल्शी सत्याग्रह का क्रमानुयायी मानते हैं। नदी के तटीय क्षेत्रों में रहने वालों को अपनी आजीविका, मातृभूमि तथा संस्कृति छिन जाने का भय होता है। अतः वे बाँध–परियोजनाओं का विरोध करते हैं। विस्थापन का मुआवजा इतना कम होता है या मिलता ही नहीं जिस कारण विस्थापित लोगों को शहरों में बेघर होकर मजदूरी करनी पड़ती है।

उल्लेखनीय है कि जो भय औपनिवेशिक काल में बाँध–परियोजनाओं प्रतिरोध के कारण बने, वही कारण सरदार सरोवर बाँध के विरुद्ध आन्दोलन का कारण बने। नदियों के प्रवाह को रोक ऊँचे बाँधों के बनाए जाने से पर्यावरण को अनेक रूप से क्षति पहुँचती है तथा विस्थापित लोगों का जीवन दूभर हो जाता है। परन्तु बाँधों का बनाया जाना आर्थिक विकास के लिए लाभदायक होता है। अतः हानि–लाभ को तोल

कर बाँध बना दिए जाते हैं। पर्यावरण के संतुलन को बिगाड़े जाने का दोष केवल ब्रिटिश सरकार को देना मेरे विचार से उचित नहीं है। सभ्यताओं के विकास में प्रकृति/संस्कृति का विरोध पूर्व–ऐतिहासिक, प्रागैतिहासिक व प्राचीन काल से चला आ रहा है परन्तु वर्तमान में वैश्विक स्तर पर पर्यावरण के ह्रास से मानव–जीवन को मिली चुनौतियाँ विषय को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए बाध्य करती हैं।

विभाजन के पूर्व भारतीय उप–महाद्वीप की पूर्व–ऐतिहासिक पर्यावरण व जलवायु की विविधताओं का वर्णन अनेक इतिहासकारों ने किया है। ब्रिजेट ऑचलिन अपने लेख 'अर्ली मैन एण्ड एन्वायरमेंट इन साउथ एशिया' में लिखती हैं कि भारतीय उपमहाद्वीप वातावरण, जलवायु व भौगोलिक विभिन्नताओं से परिपूर्ण है। पुरातत्त्वीय अवशेषों का अध्ययन करत हुए वे लिखती हैं कि किस प्रकार पूर्व–पाषाण, नव–पाषण तथा लौह या कांस्य युगीन सभ्यताएँ नई खोजों व आविष्कार के माध्यम से विकसित होती चली गई।[8] आग की खोज, कृषि करने की जानकारी या पहिए का आविष्कार एक ओर समाज को जनपद व साम्राज्य के रूप में परिवर्तित करता गया तो दूसरी ओर आग से जंगलों को जलाकर कृषि–योग्य बनाना आसान हो गया। जनपदों व साम्राज्य–निर्माण में जंगलों की लकड़ी, अधिक कृषि–योग्य भूमि की अनिवार्यता तथा जंगली जानवरों का राजाओं द्वारा शिकार या हाथियों का सेना में प्रयोग पर्यावरण पर प्रहार करने लगा। बलूचिस्तान के मेहरगढ़ खाद्यान्नों के अवशेष बोलन नदी की उर्वरकता को इंगित करते हैं। ये निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि नदी की बालू से, या नदी के सैलाब से मेहरगढ़ विलुप्त हुआ या मानवीय हस्तक्षेप के कारण नदी व उसकी सहायक धाराओं की दिशा परिवर्तित होकर मेहरगढ़ नष्ट हो गया। इसी प्रकार के तर्क सिंधु घाटी की सभ्यताओं के संदर्भ में भी प्रस्तुत किए गए हैं।[9] ऑचलिन निष्कर्षतः लिखती हैं कि ये पर्यावरण के ऊपर मानवीय हस्तक्षेप का प्रभाव केवल ध्रुवीय क्षेत्रों को छोड़कर पूरे विश्व में पड़ा था। यह सर्वविदित है कि बड़े साम्राज्य नदियों की घाटियों में पनपे। मौर्य साम्राज्य से गुप्त साम्राज्य तक तथा बड़े शहरों व राजधानियों के स्थापित होने में नदियों का योगदान रहा है तथा इस सांस्कृतिक व राजनैतिक विकास से पर्यावरण को निश्चित रूप से क्षति पहुँची होगी।

पूर्व मध्यकाल में भी राजनैतिक इकाइयों के अध्ययन में कृषि–विस्तार का विस्तृत अध्ययन किया गया है। चाहे वे मार्क्सवादी सामन्तवाद की अवधारणा हो या

क्षेत्रीय राज्य–निर्माण की, सीमावर्ती क्षेत्रों में जंगल काट कर या बंजर भूमि को कृषि–योग्य बनाए जाने की बात की गई है।[10] राज्यों के विस्तार से खाद्यान्नों की बढ़ी हुई माँग की आपूर्ति के लिए तथा राजा व नई प्रजा के बीच समन्वय करने के लिए ब्राह्मणों व कुलीन वर्गों को सीमावर्ती क्षेत्रों में भूमि–अनुदान दिए जाते थे। इन्हीं संदर्भों से सिंचाई के साधन (कूपों, तालाबों व नहरों) उपलब्ध कराने के साक्ष्य भी मिलते हैं। इनका प्रभाव निश्चित रूप से जल–संसाधनों पर पड़ा होगा।

सुमित गुहा ने अपने एक लेख में वर्तमान में जनित पर्यावरण–संकट के हल खोजने का प्रयास किया है।[11] वे मौरिस स्ट्रांग (सचिव, यू.एन.कान्फ्रेंस ऑन एन्वायरमेंट एण्ड डेवलपमेंट) द्वारा प्राकृतिक सम्पदाओं की जानकारी अतीत से लेकर पारम्परिक प्रबन्धन के द्वारा इस समस्या का हल खोजने का प्रयत्न करते हैं। माल्थस के जनसंख्या सम्बन्धी सिद्धान्त के माध्यम से राज्य द्वारा प्राकृतिक संसाधनों के नियन्त्रण के पक्ष और विपक्ष में तर्क प्रस्तुत करते हैं। एक ओर औपनिवेशिक नियन्त्रण को प्राकृतिक संसाधनों के विनाश का कारण बताया गया और वन्दना शिवा ने विदेशी नियन्त्रण को पूर्णतः दोष पूर्ण माना तो दूसरी ओर स्थानीय सामाजिक ईकाइयों द्वारा पर्यावरण की आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक महत्ता को स्वीकार कर उनके संतुलित उपयोग की पुष्टि की गई और यह स्वीकार किया गया कि औपनिवेशिक शासन में यह संतुलन बिगड़ गया।

गाडगिल और गुहा का विचार है कि ईसा की पहली शती के मध्य तक भारत में जनसंख्या का दबाव प्राकृतिक वातावरण पर पड़ा था परन्तु 'नीचे से संरक्षण' से संकट उपन्न नहीं हुआ।[12] जाति पर आधारित सामाजिक व्यवस्था में जाति–विशेष का किसी प्राकृतिक संसाधन पर एकाधिकार उस संसाधन के विवेकपूर्ण उपयोग को सुनिश्चित कर देते थे। गुहा का विचार है कि पश्चिमी भारत के सम्बन्ध में इन तर्कों की कोई प्रमाणिकता नहीं है परन्तु 1860 के बाद ब्रिटिश द्वारा लकड़ी के अनौचित्यपूर्ण उपयोग की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप परम्रागत संस्थानों के विवेकपूर्ण उपभोग की बातें की गई। गुहा ये भी लिखते हैं कि अनेक संदर्भों में महाराष्ट्र में महर जाति के लोग रात में जंगल व वृक्षों की सुरक्षा के लिए गश्त लगाते थे। परन्तु उनका मानना है कि ये गश्त महर जाति के लोगों पर ब्रिटिश राज की जंगल नीति के अन्तर्गत भी लगाई जा सकती होगी।

इन तर्क–वितर्कों को यहाँ अधिक विस्तार से देना सम्भव नहीं है इसीलिए हम परम्परागत संरक्षण के संदर्भ में प्रकृति के पवित्र उपयोग की बात कर सकते हैं। यद्यपि प्रकृति के पवित्र रूपों को पूजना भारतीय परम्परा में प्राचीन काल से समाहित है। गाडगिल और वी.डी.वर्तक ने इसको प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण से जोड़ा है। प्रारम्भिक और प्राचीन संस्कृतियों में झाड़ियों, वट वृक्ष से लेकर केंकड़ा, मोर व चीतों को पवित्र माना गया। इन शोधकर्त्ताओं के मत के अनुसार इन धार्मिक क्रिया–कलापों का मुख्य उद्देश्य आर्थिक लाभ के लिए जंगलों का संरक्षण करना होता है। लगभग बीस किलोमीटर के दायरे में जंगल को कोई क्षति ना पहुँचे इसलिए इन्हें पवित्र वन–वाटिका का दर्जा दिया जाता है।[13] ये वन–वाटिकाएँ विश्व के अनेक देशों में संरक्षित की जाती है। सूखी लकड़ी व पत्ते ईंधन का काम करते हैं तथा यहाँ अनेक औषधीय पौधे भी पाए जाते हैं। प्राणी–जगत तथा वनस्पति जगत की विविधताएँ वन–वाटिकाओं की विशेषता होती है। इनको पवित्रता प्रदान करने के लिए मंदिर भी बनाए जाते हैं तथा नियमों के विरुद्ध किसी वृक्ष या वन्य प्राणी को क्षति पहुँचाने पर दैवीय प्रकोप की अवधारणा के कारण लोग नियम विरुद्ध नहीं जाते। अनेक प्रकार के आर्थिक दण्ड भी लगाए जाते हैं। इस प्रकार प्रकृति के संरक्षण का कार्य भारत में प्राचीन काल से चला आ रहा है। इसके अतिरिक्त नदियों व तालाबों को भी पूजनीय मानकर उन्हें साफ रखने के प्रावधान सर्वविदित हैं।

रीति–कालीन ब्रज भाषा साहित्य में अनेक पर्वों व दैनिक धार्मिक रीति–रिवाजों में वृक्षों व नदियों को पूजे जाने के विवरण मिलते हैं। वट–वृक्ष पूजन अनेक अवसरों पर किया जाता था। बक्शी हंसराज कृत 'सनेह–सागर' ग्रन्थ में गोपियाँ मनचाहे वर की कामना करते हुए वट–वृक्ष की पूजा करती हैं:

लागौ जाय चित्त सबही कौ परम प्रेम अनुरागो।
बरहि पूजि ब्रज बनितन मिलि कै कान्ह–कुँवर वर माँगो।।

(बक्शी हंसराज 'स्नेह–सागर', सं. भगवान दीन, वाराणसी, नागरी प्रचारिनी सभा, 1972, खण्ड 7, पद 17)

प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग या दुरुपयोग के संदर्भ में वन्य जीवों की चर्चा भी अनिवार्य है। वनों में रहने वाले जानवरों से मानव–जीवन को खतरा होता है तथा मनुष्यों द्वारा जानवरों के शिकार किए जाने से अनेक जानवरों की संख्या में भारी

कमी आई है। महेश रंगराजन साम्राज्यों की स्थापना के समय से जंगली जानवरों को जंगलों से पकड़ कर सेना के लिए प्रयोग में लाए जाने की जानकारी देते हैं। परन्तु मौर्य शासक अशोक ने बौद्ध धर्म अपनाने के बाद अहिंसा का मार्ग चुना और सभी जीवों की सुरक्षा के प्रबन्ध किए।[14] वे वाल्मीकि रामायण में बाली वध के समय राम के कहे वाक्यों का उल्लेख करते हैं। राम ने कहा कि मनुष्यों ने जंगलों में जाल बिछाकर जानवरों को छिप कर घेरा और माँस के लिए उनकी हत्या की। इसके विपरीत सातवीं शताब्दी में चीनी यात्री ह्यून सांग ने लिखा कि घने जंगलों में जंगली जानवरों के कारण यात्रा बहुत कठिन थी। मनुष्य और वन्य जीवों के बीच हमेशा संघर्ष रहा है।

भारतीय साहित्य में हमें घने जंगलों के अनेकों उल्लेख मिल जाएँगे। बिहारी दास ने बिहारी सतसई (दोहा संख्या 5) में श्रीकृष्ण के श्याम रंग पर पीले वस्त्रों की तुलना नीलगिरि पर्वत पर खिली धूप से की है। श्रीकृष्ण के सघन वन में रास–विहार को लगभग सभी मध्यकालीन भारतीय बोलियों में पद्य–बद्ध किया गया। प्रत्येक रीति–कालीन कवि की अभिसारिका नायिका रात के समय घने जंगलों को पार करते हुए बिना किसी जंगली जानवर के भय के अपने प्रेमी से मिलने जाती है। बिहारी कवि यमुना नदी व उसके समीप बाग–वाटिकाओं और भौरौं के झुंड का वर्णन निम्न प्रकार करते हैं;

घाम घरीक निवारिये, कलित–ललित अति दुंज।
यमुना तीर तमाल तरू, मिलती मालती कुंज।।

(दोहा संख्या 48)

तात्पर्य है कि वातावरण प्राकृतिक व मनोरम है।

आर. सुकुमार इस संघर्ष को एक अन्य दृष्टिकोण से देखते हैं।[15] हाथियों द्वारा फसलों के नष्ट किए जाने के संदर्भ में उनका विचार है कि निर्वनीकरण के कारण घास खाने वाले हाथी, हिरण, मृग इत्यादि को भोजन उपलब्ध नहीं होता और वे गाँवों की तरफ भागते हैं। इस संघर्ष को कम या समाप्त करने के लिए वनों और गाँवों के बीच बाड़ व कंटीले तार लगाए जाने का प्रावधान बताते हैं। जंगलों में जानवरों को भरपूर भोजन मिले इसके लिए वन–संसाधनों के उपयोग को भी नियंत्रित किया जाना चाहिए। सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ बनानी चाहिए जिससे जानवरों द्वारा किए गए

नुकसान की भरपाई राज्य–सरकारें करें। 'प्रोजक्ट टाइगर' जैसे अभियान मनुष्य और वन–जीवों के बीच के संघर्ष को कम करने में सहायक होंगे।

दिव्य भानुशीष अपने लेख में मुगलों के शिकार गाहों तथा उनके मनोरंजन के लिए जंगली जानवरों के शिकार किए जाने की जानकारी देते हैं। मुगल साम्राज्य के संस्थापक बाबर से लेकर औरंगजेब तक सभी बादशाह शेर, चीते, हिरन आदि का शिकार किया करते थे। विचारणीय बात है कि उस काल में जंगली जानवरों का शिकार करना कानूनी अपराध क्यूँ नहीं समझा गया।

इसी प्रकार के अन्य प्रश्न हैं जो वातावरण को प्रदूषित करने के कारणों को गहन अध्ययन का विषय बनाते हैं। केवल औपनिवेशिक साम्राज्य को दोषी बनाकर समस्या की जटिलता को नहीं समझा जा सकता और न ही कोई समाधान खोजा जा सकता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी निर्वनीकरण के विरुद्ध आन्दोलन हुए। वो प्रसिद्ध 'चिपको आन्दोलन' हो या उड़ीसा के नन्दीग्राम में उथल–पुथल या वो 'नर्मदा–बचाओ आन्दोलन' हो या –सायलेंट वैली' परियोजना के खिलाफ संघर्ष, स्वतंत्रत भारत में ऐसे अनेक उदाहरण मिल जाएंगे। फिर क्यूँ औपनिवेशिक शासकों को दोष देकर समस्या से मुख मोड़ लेना चाहिए?

हमने देखा कि मानव जीवन के आरम्भ से ही ये प्रकृति और मनुष्य के बीच संघर्ष रहा है। आदि–मानव पत्थरों के औजारों से जंगली जानवरों का शिकार करके अपना भोजन जुटाता था। साथ ही में उसको जंगली जानवरों से भय के कारण गुफाओं में छुपना पड़ता था। परन्तु आज पर्यावरण का संकट हवा, पानी और भोजन जैसे जीवन के लिए अनिवार्य वातावरण को प्रदूषित कर रहा है। ये उपभोक्तावादी संस्कृति, वैज्ञानिक उपकरण अणु व परमाणु शक्तियाँ, पहाड़ों व समुद्रों में पर्यटन का विकास और न जाने कितने कारण हैं जो इस संकट का कारण हैं। भारत और वैश्विक स्तर पर जितने प्रयास किए जा रहे हैं उनको विकसित, विकासशील, तीसरी दुनिया या राष्ट्रमंडल देशों के विभाजन से ऊपर उठकर सम्पूर्ण मानवता व जीवों को इस संकट से उबारना होगा।

संदर्भ

1. गाडगिल माधव एवम् गुहा, रामचन्द्र 'द फिशर्ड लैंड : एन ईकोलोजिकल हिस्ट्री ऑफ इंडिया' 1992 : नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस. पृ.सं. 113–40

2. गुहा, रमाजीत. सम्पादित फॉरेस्ट्री एण्ड सोशल प्रोटैस्ट इन ब्रिटिश कुमाऊँ, (सब–ऑल्टर्न स्टडीस IV), 1985, नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस. पुस्तक में समाहित लेख कुमाऊँ के जंगलों में रहने वाले समुदायों के विभिन्न प्रकार के विरोधों से सम्बन्धित है।
3. जार्ज एरडोसी, "डीफोरेस्टेशन इन प्री एण्ड प्रोटोहिस्टोरिक साउथ एशिया', प्रकाशित 'नेचर एण्ड द ओरिएन्टः द एन्वायरमेन्टल हिस्ट्री ऑफ साउथ एण्ड सारथ–ईस्ट एशिया" सम्पादित रिचर्ड एच ग्रोव, विनीता दामोदरन एवम् सतपाल सांगवान, 1998 : न्यू यॉर्क : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, पृ.सं. 51–69
4. एम. अरिवलगन, शोध–पत्र 'बियोन्ड कॉलोनियालिज्म : टुवर्ड्स ए न्यू एन्वायरन्मेन्टल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया", मद्रास इन्स्टीट्यूट ऑफ डेवलपमेन्ट स्टडीज में प्रकाशित एम.आई.डी.एस. वर्किंग पेपर नं. 203
5. वही, पृ. सं. 10
6. डेवलपमेंट एण्ड चेंज, वाल्यूम 25 (1994), इन्स्टीट्यूट ऑफ सोशल स्टडीज, ऑक्सफोर्ड : ब्लैक वैल पब्लिशर्स में प्रकाशित गाडगिल, माधव व गुहा, रामचन्द्र द्वारा लिखित लेख 'ईकोलोजिकल कानफ्लिक्ट्स एण्ड द एन्वायरमेंटल मूवमेंट इन इंडिया' पृ.सं. 101–36
7. वोरा, राजेन्द्र, वर्ल्डस् फर्स्ट एंटी डैम मूवमेंट – मुल्शी सत्याग्रह (1920–24) 2018, दिल्ली : परमानेन्ट ब्लैक।
8. ऑलचिन, ब्रिजेट, "अर्ली मैन एण्ड एन्वायरमेंट इन साउथ एशिया" 'नेचर एण्ड द ओरिएंट' में प्रकाशित, पृ.सं. 29–50
9. बी.बी.लाल एवम् एस.पी.गुप्ता द्वारा सम्पादित 'फ्रन्टियर्स ऑफ इंडस सिविलाइज़ेशन, 1984, दिल्ली : बुक्स एण्ड बुक्स पब्लिशर्स में वी.एन.मिश्रा का अध्याय, पृ. सं. 460–83। मिश्रा घग्गर नदी के राजस्थानी व गुजराती क्षेत्रों में स्थित सिंधु घाटीय संस्कृति के पतन के कारणों का विवेचन अनेक इतिहासकारों के मतों के संदर्भ से करते हैं। शायद वातावरण की नमी में कमी आना, वर्षा में कमी आना या नदियों का दिशा परिवर्तन व जल में कमी आना घग्गर सभ्यता के नष्ट होने के कारण थे। सम्भावित कारणों में इस क्षेत्र में आबादी के बढ़ने

से मानवीय हस्तक्षेप से प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव पड़ा होगा तथा सूखा व अकाल की परिस्थितियों में सभ्यता नष्ट हो गई होगी।

10. शर्मा, आर.एस. "इंडियन फ्यूडलिज्म", चट्टोपाध्याय, बी.डी., द मेकिंग ऑफ अर्ली मैडीवल इंडिया", कुल्के, हरमन, 'किंग्स एण्ड कल्ट्स...." पुस्तकें सामन्तवाद के विचार या राज्य–निर्माण के दृष्टिकोण में कृषि–विस्तार और उसके लिए सिंचाई–संसाधनों के विवरणों से परिपूर्ण हैं। इसके अतिरिक्त जितनी भी पुस्तकें चालुक्य, राष्ट्रकूट, पल्लव या चोल वंशों पर लिखी गई हैं, राजाओं व कुलीन वर्गों द्वारा जलाशय, कूपों, तालाबों, नहरों या अन्य सिंचाई के साधनों के निर्माण के संदर्भ उपलब्ध कराती है।
11. गुहा सुमित, "आई.ई.एस.एच.आर., 39, 2&3 (2002) के अंक में प्रकाशित लेख "क्लेम्स ऑन द कॉमन्स : पोलिटिकल पावर एण्ड नेचुरल रिसोर्सिस इन प्री–कोलोनियल इंडिया", पृ.सं. 181–96
12. गाडगिल, गुहा. द फिशर्ड लैंड, पृ.सं. 9–95
13. गाडगिल एवम् वर्तक, वी.डी., द सेक्रेड ग्रोव्स ऑफ वैस्टर्न घाट्स ऑफ इंडिया' 1976, इक्नोमिक बॉम्बे 30, पृ.सं. 82
14. रंगराजन, महेश. 'सम्पादित एन्वायरमेंटल इशूज इन इंडिया : ए रीडर' अध्याय चार "द फॉरेस्ट एण्ड द फील्ड इन एंशियन्ट इंडिया"। 15वां संस्करण, 2017 : दिल्ली डोरलिंग किंडरस्ले (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, पृ.सं. 42–48
15. आर.सुकुमार, "वाइल्ड लाइफ–ह्यूमन कान्फलिक्ट इन इंडिया : एन ईकोलोजिकल एण्ड सोशल परस्पेक्टिव" नामक लेख रामचन्द्र गुहा सम्पादित 'सोशल ईकोलोजी' 1991 : दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, पृ.सं. 304–15
16. रंगराजन सम्पादित 'एन्वायरमेंटल इशूज़ इन इंडिया में प्रकाशित दिव्यभानुशीष लिखित "द ग्रेट युगल्स गो हन्टिग" पृ.सं. 49–69